Contemporary Relevance of Yoga-Vigyan
योग–विज्ञान की आधुनिक प्रासंगिकता

आकृति ठाकुर[1], योगेश शर्मा[2]
Aakriti Thakur[1], Yogesh Sharma[2]
[1]Research Scholar- Department of Sanskrit, Philosophy and Vedic Studies, Banasthali Vidyapith, Tonk, Rajasthan
[2]Associate Professor- Kalakosa Division, Indira Gandhi National Centre for the Arts, New Delhi
[1]aakrititthakur2@gmail.com, [2]ycsharma2000@yahoo.co.in
https://doie.org/10.1229/VP.2023694321

योग की साधना का उदय कब और कैसे हुआ, यह कहना कठिन है, परन्तु आरम्भ से ही भिन्न–भिन्न देश, काल और स्थिति में योग–परम्परा अपने विविध रूपों में दिखाई देती है। वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषदों आदि ग्रन्थों में योग पर विस्तार से चर्चा की गई है। इसके अतिरिक्त महर्षि पतञ्जलि का योगसूत्र योगदर्शन का स्वतन्त्र रूप से प्रामाणिक एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। पातञ्जल योगसूत्र में कुल 195 सूत्र हैं, जो चार पादों में विभक्त हैं – (1) समाधिपाद (2) साधनपाद (3) विभूतिपाद, एवं (4) कैवल्यपाद। इस पर अनेक महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ प्राप्त होती हैं जिनमें योगसूत्रव्यासभाष्य, विज्ञानभिक्षु का वार्त्तिक, वाचस्पति मिश्र की तत्त्ववैशारदी टीका, भोजदेव की भोजवृत्ति, रामानन्द यति की 'मणिप्रभा' टीका आदि विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। प्रस्तुत शोध–पत्र में पातञ्जल योग, भारत में प्रचलित अन्य योग–साधनाएँ एवं वर्तमान में योग–विज्ञान की प्रासंगिकता का प्रकाशन किया गया है।

It is difficult to ascertain when and how the practice of Yoga has begun, but the tradition of Yoga is evident in various forms, periods and regions. Yoga has been broadly discussed in Vedas, Brahmanas, Aranyakas, Upanishads etc., in Indian tradition. Moreover, Yogasutra, composed by Maharshi Patanjali, is the most authentic text on Yoga philosophy. There are 195 sutras in Patanjal Yogasutra which are divided in fours chapters (padas) viz. (i) Samadhi (ii) Sadhana (iii) Vibhuti (iv) Kaivalya. Many important commentaries are available on these, among which Yogasutra Vyasabhashya, Vartika by Vigyanbhikshu, Tattvavaishardi commentary by Vachaspati Mishra, Bhojavritti by Bhojdeva, Maniprabha commentary by Ramananda Yati etc., are particularly famous ones. Here, in this research paper, Patanjali's Yoga, other Yoga practices prevalent in India and relevance of Yoga in present time, have been discussed.

योग की पृष्ठभूमि

भारत में योग आरम्भ से ही हमारी जीवन शैली का अभिन्न अंग रहा है। यह व्यक्ति को आध्यात्मिक बोध से सम्पन्न करता है। भारत में ही नहीं अपितु एशिया, अफ्रीका एवं अमेरिका तक भारतीय योग–विज्ञान का विस्तार देखने को मिलता है। वैदिक एवं औपनिषदिक साहित्य, बौद्ध–जैन परम्परा, दर्शनशास्त्र, महाभारत, रामायण आदि आर्षकाव्य, शैव, वैष्णव, शाक्त आदि सम्प्रदायों की ईश्वरवादी विचारधारा, तान्त्रिक परम्परा तथा लोक–प्रथा आदि में योग की उपस्थिति स्पष्ट रही है।

योग के सिद्धान्त एवं अनुप्रयोग की परम्परा का भारत में ऐतिहासिक महत्त्व रहा है। मूलरूप से योग का बीज हमें वेद में देखने को मिलता है। ऋग्वेद के अन्तर्गत योग शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया गया है, जैसे– जोड़ना, अनुपलब्ध की प्राप्ति, अश्व–नियन्त्रण, इन्द्रिय–नियन्त्रण इत्यादि।[1] योग

का मोक्ष के साधन के रूप में उल्लेख न होने पर भी इसे ज्ञान–प्राप्ति, शान्ति, देवोपासना, तप एवं आत्मसंयम के रूप में स्पष्ट किया गया है। ऋग्वेद के अतिरिक्त यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शतपथ एवं तैत्तिरीय ब्राह्मण, आरण्यक आदि ग्रन्थों में योग शब्द का उल्लेख हुआ है । इनमें कुछ स्थानों पर प्रयुक्त 'योग' शब्द समाधि, युक्ति तथा साधना का प्रतिपादन करता है।[2,3,4]

उपनिषदों में योग एवं विज्ञानमय कोश

वेदान्त अर्थात् उपनिषद्–ग्रन्थों में योग की महत्ता एवं उपयोगिता का वर्णन है। कठोपनिषद, श्वेताश्वतरोपनिषद्, तैत्तिरीयोपनिषद्, बृहदारण्यकोपनिषद् आदि में योगविद्या का उल्लेख मिलता है। कठोपनिषद् में योग को आत्मज्ञान के महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में स्वीकार किया गया है। इसके अन्तर्गत इन्द्रिय, मन और बुद्धि की स्थिर धारणा को ही योग बताते हुए अन्तरात्मा (consciousness) के साक्षात्कार पर बल दिया गया है।[5] अतः परमात्मा को प्राप्त करने के इच्छुक साधक के निरन्तर योगाभ्यास करते रहने की बात की गई है, जिससे साधक विकार एवं मृत्यु रहित होकर ब्रह्म को प्राप्त होता है अर्थात् आत्मा में स्थित हो जाता है। इसी क्रम में श्वेताश्वतरोपनिषद् में योग के अंग, ध्यानयोग की प्रक्रिया एवं उसके अनुप्रयोग की व्याख्या की गई है। यहाँ योग को 'ब्रह्मणि योगे' के रूप में बताकर परमात्मा के साक्षात्कार के साधन के रूप में देखे जाने का संकेत मिलता है। बृहदारण्यक[6] एवं मैत्रायणी उपनिषद् में समाधि के द्वारा चित्त को शुद्ध करने एवं स्वयं की अनुभूति के आनन्द पर विचार किया गया है।

इसी शृंखला में तैत्तिरीयोपनिषद् में पञ्चकोशीय अवधारणा के रूप में योग का विज्ञान से सम्बन्ध बताया गया है। इसमें पाँच कोशों का वर्णन है– अन्नमयकोश, प्राणमयकोश, मनोमयकोश, विज्ञानमयकोश तथा आनन्दमयकोश। यहाँ जीवात्मा का अन्न, प्राण, मन, विज्ञान तथा आनन्द का क्रम है। यह स्थूल से सूक्ष्म के क्रम में निर्धारित अवधारणा है। इस प्रसंग में विज्ञानमयकोश को आत्म–विज्ञान अर्थात् 'स्वयं की खोज' की अवधारणा के रूप में देखा जा सकता है। विज्ञानमय कोश और योग के सम्बन्ध को समझने हेतु सर्वप्रथम विज्ञान का स्वरूप जानना आवश्यक है। साधक द्वारा विषयों का अनुभव करके यथार्थ बुद्धि द्वारा अर्थ का निश्चय किया जाता है। वह बुद्धि द्वारा होने वाला यथार्थ ज्ञान ही विज्ञान का पर्याय है। यह निश्चयात्मक अर्थ (ज्ञान) बुद्धि का धर्म है। यह धर्म ही मनुष्य में कर्तव्यों अर्थात् कर्मों के प्रति श्रद्धा का भाव जागृत करता है। प्रत्येक कोश की पुरुष के रूप में संकल्पना की गई है। विज्ञानमय कोश में श्रद्धा को उसका सिर माना गया है जिसके आधार पर वह कार्यों में प्रवृत्त होता है।[7] विज्ञानमय पुरुष का दाहिना भाग ऋत तथा बायाँ भाग सत्य कहा गया है।[8]

ऋत शास्त्र–सङ्गत है अर्थात् जो अर्थ शास्त्र तथा बुद्धि के द्वारा निश्चित होता है, वह ऋत के रूप में स्वीकार किया गया है। उस ऋत (यथार्थ ज्ञान) का भाषण ही 'सत्य' है। इस प्रकार शाश्वत एवं यथार्थ ज्ञान ही सत्य के वास्तविक स्वरूप का बोध करा सकता है। इस विज्ञानमय पुरुष की आत्मा योग है– 'योग आत्मा'। आचार्य शङ्कर अपने भाष्य में योग को युक्ति के रूप में वर्णित करते हैं जिसका अर्थ है 'समाधान' (समाधि)।[9]

आत्मवान् पुरुष जब अपने स्वरूप में स्थित होता है, तो वह युक्ति अर्थात् समाधि की अवस्था में रहता है। वेदान्तदर्शन के नियन्त्रित मन के साथ अनुकूल विषयों में स्थिर हो जाना ही समाधि है।[10] समाधि सम्पन्न पुरुष के श्रद्धा, सत्य, ऋत आदि अंगरूप साधन यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति में सहायक होते हैं। अतः समाधि अर्थात् योग ही विज्ञानमय पुरुष की आत्मा है। विज्ञान और योग को पृथक्–पृथक् नहीं देखा जा सकता।दोनों का सम्बन्ध चेतना की वास्तविक स्थिति से है, जिसमें एक क्रम दृष्टिगत है। साधक विज्ञानस्वरूप योग अथवा योगस्वरूप विज्ञान को प्राप्त कर आत्मा में स्थित हो सकता है। इस आत्मा की चार अवस्थाएँ मानी गई हैं – जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय। विज्ञान का सम्बन्ध सुषुप्ति

अवस्था से माना गया है। यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें संसार असांसारिक प्रतीत होता है एवं साधक स्वयं में स्थित हो जाता है। यही विज्ञानमय कोश है, जिसे आत्मा की सुषुप्ति अवस्था कहा जा सकता है। सम्भवतः पातञ्जल योग में जो योग की स्थिति है, वह शारीरिक अर्थात् केवल बाह्य न होकर आन्तरिक है। यही स्थिति पञ्चकोशीय अवधारणा के अन्तर्गत विज्ञानमय कोश के रूप में दिखाई देती है। यद्यपि उपनिषद्–दर्शन में योग की स्पष्ट रूप से व्याख्या की गई है, किन्तु विज्ञानमय कोश का योग से जो सम्बन्ध प्राप्त होता है, वह इसके विशिष्ट पक्ष की ओर ध्यान आकृष्ट करता है। यह प्रक्रिया पातञ्जल योग से लगभग एक समान होने पर भी स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्म से सूक्ष्मतर एवं सूक्ष्मतर से सूक्ष्मतम अवस्था को प्राप्त कर चित्त की एकाग्रता के द्वारा आत्मा में स्थित होने की प्रक्रिया का संकेत करती है। यहाँ साधक द्वारा 'आत्मन्येवात्मना तुष्टः' रूपी स्थिति को प्राप्त किया जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में इसे 'स्थितप्रज्ञ' कहा गया है।[11] निश्चयात्मक ज्ञान (यथार्थ ज्ञान) को विज्ञान तथा योग को इस विज्ञान की आत्मा के रूप में बताना, उसकी कर्मपरक व्याख्या भी प्रस्तुत करता है। प्राचीनकाल में विज्ञान रूप युक्ति (योग) की प्रक्रिया द्वारा यज्ञ–कर्म का सम्पादन होता था।[12] व्यवहारिक पक्ष की दृष्टि से भी विज्ञानमय पुरुष का केन्द्र अर्थात् योग–तत्त्व पर चिन्तन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। चूँकि योग विज्ञान की आत्मा है। यह अङ्गी रूप आत्मा सभी विषयों के केन्द्र में विद्यमान रहता है। श्रद्धा, सत्य एवं ऋत इसके अङ्ग हैं। इसलिए शास्त्र सम्मत नियमों एवं कर्मों का भाषण यदि श्रद्धापूर्वक किया जाता है तो व्यक्ति का चित्त क्लेशरहित एवं जीवन संतुलित तथा संयमित होगा।[13] अतः वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी इनका महत्त्व स्पष्ट है।

श्रद्धा, सत्य, ऋत तथा युक्ति अर्थात् योग से सम्पन्न साधक अपने जीवन के व्यवहारिक एवं आध्यात्मिक, सभी पक्षों में एकाग्रता एवं स्थिरता का परिचय देता है। समाधि रूपी योग सभी प्रकार के दुःखों को भी क्षीण करने वाला है। अतः सभी अङ्गों के साथ, योग के प्रयोग द्वारा जीवन–दर्शन की आदर्श स्थिति को प्राप्त करना सम्भव है। विज्ञानस्वरूप श्रद्धापूर्वक, शास्त्रसम्मत एवं सत्यनिष्ठ योग ही जीवन के समस्त लौकिक–अलौकिक दुःखों का नाश करता है एवं कर्मों में योग्यता के अनुसार चेष्टा करने वाले साधक को सिद्धि प्रदान करता है।[14] यही सिद्ध योगी तथा सामान्य मनुष्य दोनों के व्यवहारिक जीवन में प्रासङ्गिक और उपयोगी होना चाहिए।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में योग

वर्तमान काल में भारत ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व योग की महत्ता को समझकर इसके निरन्तर अभ्यास एवं नवीन अनुप्रयोग की दिशा में अग्रसर है। आधुनिक साधकों का अनुभव से प्राप्त मन्तव्य है, कि योग मानसिक होता है। तात्पर्य यह है कि योगासन की स्थिति में सुखपूर्वक प्राप्त स्थिरता को शारीरिक नहीं मानसिक समझा जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त ज्ञानयोग पर चर्चा करने हेतु दो बिन्दु महत्त्वपूर्ण हैं – विवेक और वैराग्य। यहाँ वैराग्य का अर्थ है "हर स्थिति को स्वीकार कर लेना अर्थात् प्रत्येक स्थिति में स्वयं को ढाल लेने का सामर्थ्य"। वस्तुतः योग एक ऐसा तत्त्व नहीं, जिसकी प्राप्ति के लिए प्रयास किया जाए, यह तो स्वयं होता है। यदि व्यक्ति योगचर्या हेतु एकाग्रता को अनिवार्य समझे तो युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता, क्योंकि यदि आप एक वस्तु पर स्थिर हैं तो कहीं न कहीं आपका चित्त उस वस्तु से बंधा है। योग तो मुक्त करता है। अतः चित्त की जो शून्यावस्था है, वही योग की स्थिति है। एक सम्भावित निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि धारणा, ध्यान, एकाग्रता इत्यादि योग से पूर्व की अवस्था हैं। योग तो समाधि है, जैसा कि विज्ञानमय कोश के प्रसङ्ग में 'योगो युक्तिः समाधानम्', रूप में प्रयोग भी मिलता है। यह कहना उचित है कि जब साधक सभी स्थानों और स्थितियों से अलग हो जाएगा, तो वह योग में अवस्थित हो जाएगा। वर्तमानयोग के अन्तर्गत साधक द्वारा इसके उत्कृष्ट स्तरों जैसे – साधना, सेवा, सत्संग, समर्पण, प्रसन्नता (स्माइल), सद्गुरु इत्यादि पर विचार किया गया है। इनमें दो बातें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, जो योग से कोश की स्थिति तक

स्पष्ट देखी जाती हैं। प्रथम जो आनन्द और सुख की स्थिति है, उसके लिए आवश्यक है – सेवा। उदाहरण के लिए महान् साधक रामकृष्ण परमहंस, नीम करौली बाबा, लाहिड़ी महाशय, परमहंस योगानंद आदि के उपदेशानुसार मानव जीवन का उद्देश्य दूसरों की सेवा करना है, अन्य कुछ भी नहीं। मनुष्य द्वारा अपनी इन्द्रियों की सन्तुष्टि के लिए जो कुछ किया जाए, वह सुख है, परन्तु हम किसी और के लिए कुछ करते हैं, तब वह आनन्द है अर्थात् मानसिक सन्तुष्टि से उत्कृष्ट स्तर पर पहुँच कर ही आनन्द की स्थिति सम्भव है। मनोमय कोश के बाद जब विज्ञानमय कोश में सूक्ष्म सत्ता में पहुँचकर आत्मा का चिन्तन होता है, वही आनन्दमय कोश है। वही आत्मस्वरूप में स्थित होना है। अतः वर्तमान में साधकों को योग के निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता है तथा यह अभ्यास शारीरिक से कहीं अधिक मानसिक है। मानसिक योगाभ्यास से भी उन्नत स्थिति है स्वयं को रिक्त कर देना। यहाँ साधक स्वयं को रिक्त कर विज्ञानमय कोश की उस अवस्था को प्राप्त करता है, जहाँ वह स्वयं को उपेक्षित करते हुए श्रद्धा को धारण कर सत्य एवं ऋत रूपी दो पक्षों द्वारा परमावस्था की ओर अग्रसर होता है और विषयों को यथार्थ रूप में ग्रहण करते हुए आत्मशुद्ध चैतन्य की ओर उन्मुख होता है, और अन्ततः आनन्दानुभूति को प्राप्त होता है। यही स्थितप्रज्ञ तथा 'मुक्तसंग समाचर'[15] की स्थिति है। इस दृष्टि से कार्य करते हुए समाज में संतुलन सम्भव है। जब हम स्वयं को भूलकर दूसरों के लिए कार्य करेंगे, तो निश्चित रूप से समाज में संतुलन स्थापित होगा और हम एक अच्छे परिणाम की ओर अग्रसर होंगे।

उपसंहार

वर्तमान युग तकनीकी एवं विज्ञान–प्रधान विचारधाराओं का युग है। मनुष्य अपने जीवन को उन्नत एवं सुविधाजनक बनाने हेतु निरन्तर प्रयास कर रहा है। वह भौतिक–विज्ञान में चाहे जितनी भी उन्नति कर ले किन्तु यदि आत्म–विज्ञान में उत्कृष्ट अवस्था प्राप्त करना सम्भव न हो तो समाज, राष्ट्र ही नहीं सम्पूर्ण विश्व में ही अशान्ति एवं असंतुलन की स्थिति बढ़ती रहेगी। अतः आधुनिक परिप्रेक्ष्य में भौतिक एवं सामाजिक विकास जितना प्रत्यक्ष है, मनुष्य का आत्म–बोध उतना ही प्रासङ्गिक एवं अनिवार्य प्रतीत होता है तथा योग ही इसका सर्वोत्कृष्ट साधन है।

1. ऋग्वेद **१.३४.९; ७.६७.८; ३.२७.११**
2. मन्यवेऽयस्तापं क्रोधाय निसरं योगाय योक्तारं शोकायाभिसर्तारं क्षेमाय विमोक्तारमुत्कूलनिकूलेभ्य. स्त्रिष्ठिनं वपुषे मानस्कृतं शीलायाञ्जनीकारीं निर्ऋत्यै कोशकारीं यमायासूम् ।। (यजुर्वेद **१३.१४**, वाजसनेयी संहिता **३०.१४**, तैत्तिरीय ब्राह्मण **३.४.१.१०**)
3. योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे । सखाय इन्द्रम. ूतये ।। (ऋग्वेद **१.३०.७**, शुक्ल यजुर्वेद **१.१४**, सामवेद **१.१६३; २.९३**, अथर्ववेद **२०.२६.१**, शतपथ ब्राह्मण **६.३.२.४**)
4. त्वं हि युक्तं युयुक्षे योग्यं च (अथर्ववेद **८.९.७**)
5. तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्। अप्रमत्तस्तदा भवति योगो दि प्रभवाप्ययौ ।। (कठोपनिषद् **२/३/११**), (कठोपनिषद् (**२/१/१**)
6. तस्मादेवं विच्छान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वाऽऽत्मन्येवात्मानं पश्यति । (बृहदारण्यकोपनिषद् **४/४/२३**)
7. स वा एष पुरुषविधः एव। तस्य पुरुषविधतान्मन्वयं पुरुष. विधः। तस्य श्रद्धैव शिरः। (तैत्तिरीयोपनिषद् **२/४**)
8. ऋतं दक्षिणः पक्षः । सत्यमुत्तरः पक्षः। (तैत्तिरीयोपनिषद् **२/४**)
9. योगो युक्तिः समाधानम्, आत्मेवात्मा। (तैत्तिरीयोपनिषद्, ब्रह्मानन्द वल्ली, शाङ्करभाष्य)
10. निगृहीतस्य मनसः श्रवणादौ तद्वुगुणविषये च समाधिः समाधानम्। (वेदान्तसार)
11. आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते। (श्रीमद्भगवद्गीता **२/५५**)
12. विज्ञानं यज्ञं तनुते। कर्माणि तनुतेऽपि च। (तैत्तिरीयोपनिषद्, ब्रह्मानन्द वल्ली, पञ्चम अनुवाक)
13. श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः (श्रीमद्भगवद्गीता **४/३९**)
14. युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु। युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।। (श्रीमद्भगवद्गीता **६/१७**)
15. यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः। तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर।। (श्रीमद्भग. वद्गीता3.9)